नालंदा विश्वविद्यालय के शैक्षणिक योगदानों का विश्लेषनात्मक अध्ययन

सुनिल कुमार यादव
शोधार्थी
इतिहास विभाग
ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा
मोबाईल नं0– 8210748434

भारत ही नहीं विश्वभर में शिक्षा के क्षेत्र में नालंदा विश्वविद्यालय की भूमिका महत्वपूर्ण रही हैं इसका जिक्र प्राचीन इतिहास के ग्रंथों में मिलता है। यहां का शैक्षणिक माहौल एवं अध्यापकों की विद्वता का बखान यत्र–तत्र देखने को मिलता है यह विश्वविद्यालय न सिर्फ अपनी शिक्षण व्यवस्था के लिए बल्कि स्थापत्य के दृष्टिकोण से भी अपनी पहचान विश्व में स्थापित किया है। जहां दुनिया भर के जिज्ञासु छात्र एवं विद्वत जन अध्ययन अध्ययापन के लिय यहां आते रहे हैं और भारत की ज्ञान विज्ञान, तंत्र विद्या, एवं बौद्ध साहित्यों का अध्ययन कर दुनियां में उसका प्रचार प्रसार किये।

नालंदा विश्वविद्यालय के अवशेषों के उत्खनन से ज्ञात होता है कि नालंदा विश्वविद्यालय कम से कम एक मील लंबा और आधा मील चौड़ा था। इसका सिर्फ एक द्वार दक्षिण दिशा में था। पूर्व निश्चित योजना अनुसार ही विहार और तत्सम्बद्ध स्तुपों का निर्माण हुआ था जो एक पंक्ति में निश्चित दूरी पर हैं। मुख्य दरवाजा मुख्य महाविद्यालय के सामने खुलता था।[1] जिसमें संबद्ध संघाराम में आठ विशाल व्याख्यान भवन तथा 30 छोटे कमरे थे।[2] सभी संघाराम और भवन अति कान्तिमान और कई मंजिले ऊचें थे, जिनकी भव्यता और उतुंग शिखर का हवे्संग ने बार–बार वर्णन किया है।[3] ह्वेनसंग की पुष्टि आठवीं शताब्दी के यशोवर्मन के नालंदा शिलालेख से भी होता है।[4] ह्वेनसंग के जाने के 40 वर्ष बाद भारत आया था, ने भी नालंदा के विहार और भवनों के संबंध में वर्णन दिया है।[5] नालंदा में निर्मल जल तथा नील कमलों से परिपूर्ण अनेक जलाशय थे जो इसके सौन्र्दय को द्विगुणित करते थे। नालंदा की खुदाई से अब तक 13 विहारों को निकाला जा चुका है जिसमें प्रथम विहार सबसे पुराना था। मानचित्र के अवलोकन से पता चलता है कि विहारों की संख्या और अधिक थी। विहार कम से कम दो मंजिले अवश्य थे। इन्ही विहारों में भिक्षु और विद्यार्थियों के आवास थे। इनमें कुछ कमरें ऐसे थे जिसमें सिर्फ एक ही विद्यार्थी रह सकता था। प्रत्येक विद्यार्थी के लिए पत्थर की एक चौकी, दीप और पुस्तकें रखने के लिए अलग बना हुआ था। उत्खनन में प्रत्येक विहार प्रांगण के एक कोने में कुंआ मिला है। इसमे पता चलता है कि यहाँ जल व्यवस्था की उपेक्षा नहीं की गई थी। प्रवेश क्रम के अनुसार भिक्षुओं को कमरे दिये जाते थे। कोठारियों का पुनर्वितरण प्रतिवर्ष होता था। 675 ई0 में इत्सिंग जब नालंदा में निवास करता था वहाँ 3000 विद्यार्थी के विद्याध्यन का वर्णन किया है।[6] किन्तु ह्वेनसंग का जीवनी लेखक ह्वीली (Whelly) लिखा है कि 7वीं शताब्दी के मध्य भाग में नालंदा में विद्यार्थियों की संख्या 10,000 रही थी।[7] कुछ लोग नालंदा की खुदाई के आधार पर ह्वीली द्वारा दी गई छात्र संख्या पर संदेह करते हैं। स्वयं ह्वेनसांग इतना कहता है कि नालंदा में कई हजार विद्यार्थी थे।[8]

यहां विद्यार्थियों के भोजन, वस्त्र, आवास एवं दवा की व्यवस्था निःशुल्क थी। विश्वविद्यालय को पर्याप्त दान मिलता था जिससे वहां का प्रबंध चलता था। देव देश के राजा ने एक सौ गांव का राजस्व इस विश्वविद्यालय को दान के रूप में दिया था।[9] इस साहित्यिक या़त्रा वर्णन के अतिरिक्त शिलालेखीय प्रामाण भी नालंदा को दान प्राप्त होन के मिलें हैं।[10] एक अभिलेख से ज्ञान होता है कि राजा यशोवर्मन के एक मंत्री ने लालंदा के विद्यार्थियों के भोजन के लिए बहुत अधिक दान दिया था। उसने एक विहार खरीदकर नालंदा को दान में दिया था। एक दूसरे अभिलेख से ज्ञात होता है कि सुवर्णद्वीप के राज बलपुत्र देव ने भी यहां एक विहार निर्मित कराया था तथा उसके सालाना खर्च के लिए अपने मित्र बंगाल के राजा देवपाल को अपने राजदूत वलवर्मन द्वारा पांच गांव दान करने के लिए प्रेरित किया था।[11] इस निधि के एक भाग से पुस्तकों की प्रतिलिपि करायी जाती थी।[12] सम्पूर्ण प्रबंध का प्रधान नियामक भिक्षु महास्थविर होता था, जिसके सहायतार्थ दो परिषदें रहती थीं :– प्रथम शिक्षा संबंधी कार्यों के लिए तथा दूसरी सामान्य प्रबंध के लिए। विश्वविद्यायल में विद्यार्थियों के प्रवेश, पाठ्सक्रम निर्धारण तथा अध्यापकों में पाठ्य विषयों के विभाजन का कार्य, शिक्षा समिति करती थी। शिक्षा समिति

ही पुस्तकालयों का प्रबंध करती थी। पुस्तकों का संकलन, प्रकाशन, जीर्ण–शीर्ण पोथियों के पुनर्लेखन तथा प्रारूप, पुस्तकों की प्रतिलिपि आदि की व्यवस्था का उत्तरदायित्व इसी समिति पर था। प्रायः भिक्षु अध्यापक और उनके शिष्य ही प्रतिलिपि का कार्य कर लेते थे, किंतु आवश्यकता पड़ने पर इस कार्य के लिए लेखकों की नियुक्ति भी की जाती थी।

प्रबंध समिति का कार्य विश्वविद्यालय के सभी प्रकार का प्रबंध तथा आय व्यय का संचालन करना था। नये भवनों का निर्माण तथा पुराने भवनों की मरम्मत, छात्रों के लिए आवास भोजन, वस्त्र तथा चिकित्सा की व्यवस्था तथा विहारों के अन्य कार्यों का संचालन इसी समिति के कार्यक्षेत्रों में था। दान में दिये गये गांवों के लगान की वसूली, खेतों के पट्टे, किसानों के साझे के अनाज की वसूली, प्राप्त अन्न के संचय तथा समय पर उनके वितरण की व्यवस्था भी इसी समिति कार्यनतर्गत आते थे। निश्यच ही इसके लिए बहुत से कर्मचारी नियुक्त रहे होंगे। महास्थविर का चुनाव होता था जो ख्यातिलब्ध होता था। चुनाव में भिक्षु के चरित्र और पांडित्य का ध्यान रखा जाता था। 8वीं शताब्दी के एक लेख से ज्ञात होता है कि शास्त्र पारंगत प्रगाढ़ पंडितों के कारण नालंदा तत्कालीन सभी नगरियों का उपहास करती थी।[13]

विश्वविद्यालय के पठन कार्य में नियम का पालन करना सभी विद्यार्थियों एवं भिक्षुओं लिए अनिवार्य था। घंटे की आवाज पर शायन, जागरण, भोजन, अराधना आदि होते थे।[14] सर्वप्रथम बुद्ध की प्रशस्ति गान की जाती थी जिसने मोक्ष प्राप्ति का सरल मार्ग ढुंढ़ निकाला था। इसके बाद गुरूजनों का आशीष लेना अनिवार्य था। गुरूजनों के प्रति श्रद्धा तथा शिष्टता का वर्ताव यहां प्रशंसनीय था। प्रत्येक अध्ययनार्थी का जीवन स्वच्छ, त्याग और तपस्या का जीवन था। निवास करने वाले भिक्षु उद्भट विद्वान और प्रगाढ़ पंडित थे। उनमें कुछ ऐसे थे। वे परस्पर एक दूसरे की सहायता करते थे। विश्वविद्यालय के महापंडितों और वाद विवाद में हिस्सा लेने वोले पंडितों के नाम प्रवेश द्वार के उत्तुंग मुख्य द्वार पर श्वेताक्षरों में लिखे होते थे, ताकि प्रत्येक आगन्तुक और दर्शनार्थी उनकों जान सकें।

यहाँ के शिक्षकों की संख्या लगभग 1500 थी, जिसमें एक हजार शिक्षक 30 सूत्र निकायों में दक्ष थे, और शेष 500 अन्य विषयों सहित 20 सूत्र निकायो में दक्ष थे।[15] नालंदा के कुलपति अपने पांडित्य के लिए जितने विख्यता थे, उतने ही अपने निर्मल चरित्र व आध्यात्म ज्ञान के लिए प्रशंसित। धर्मपाल और चन्द्रपाल, जिन्होंने तथागत की शिक्षाओं को सुवासित कर दिया था। गुणमति और स्थिरमति जिनका पांडित्य और कीर्ति सर्वज्ञात थे, प्रमामित्र जिन्होंने विवादों में अपने सुस्पष्ट तर्कों की धात जमा दी थी, जिनमित्र जिनका संभाषण उच्य स्तर का था, जिनचन्द्र जिनका आचरण आदर्शभूत तथा बुद्धि प्रखर थी तथा शीलभद्र जिनकी सर्वगुण सम्पन्नता व स्वतंत्र प्रज्ञा विनय के कारण प्रकट नहीं होती थी– ये सर्व आदर्शचारिणी विद्वान नालंदा की कीर्ति बढ़ा रहे थें।[16] ये विद्वान अध्ययन अध्यापन से ही संतुष्ट नहीं थे, अपितु इन्होंने अनेक बहुमूल्य ग्रथों की रचना की थी, जिनका उनके समय में ही बहुत प्रचार तथामान हो गया था।

नलंदा में पुस्तकालय के मोहल्ला का नाम धर्मगंज था, जो अतिमहम्वपूर्ण था। नालंदा के धर्मगंज हिस्से में तीन विशालकाय पुस्तकालय थे, जिनका नाम था – रत्नसागर, रत्नोदधि और रत्नरज्जक।[17] इनमें रत्नोदधि नौ खण्डों मे स्थित था। सभी खण्डों में अनगिनत ग्रंथ रत्न भरे पड़े थे। पाण्डुलिपियों तैयार करने के लिए अनेक भिक्षुक नियुक्त किये गये थे। ह्वेसंग यहां दो वर्ष तक कुल 657 ग्रंथों की प्रतिलिपि तैयार कर चीन ले गया। नालंदा के कई हस्तलिखित ग्रंथ कैम्ब्रिज तथा लंदन के पुस्तकालयों में प्राप्त हुए हैं।[18]

नलंदा के विद्वान बौद्ध धर्म के प्रसार – प्रचार में अत्यन्त सक्रिय थे। 8वीं शताब्दी में तिब्बत में बौद्ध धर्म और संस्कृति के प्रसार के लिए नालंदा के विद्वानों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी और इसी कारण नालंदा में तिब्बती भाषा के अध्ययन की भी व्यवस्था की गई थी। नालंदा के भिक्षु वर्म गोमिन तिब्बत में बौद्ध धर्म प्रचार के अग्रदूत बने थे। तिब्बत के राजा रवीस्त्रों डेनात्सान् ने 747 ई0 में नालंदा में भिक्षु शांतरक्षित नामक एक विद्वान को बौद्ध के प्रचारथ्र आमंत्रित किया था तथा उनकी सहायता पद्मसम्भव नामक दूसरे भिक्षु ने वहां की थी।[19] नालंदा के 10वीं 11वीं और 12वीं सदी के लेख एवं ग्रंथों की अनेक पाण्डुलिपियां भी तिब्बत में मिली हैं। जिनको खच्चर से ढो कर राहुल सांस्कृतायन पटना संग्रहालय में लाये थे जिसे संग्रहालय प्रशासन ने आज भी सुरक्षित कर सर्वसुलभ बना रखा है।

नलंदा विश्वविद्यालय में उच्च कोटि का अनुशासन था। ह्वेनसंग ने लिखा है[20] कि जब वह नालंदा में था कभी किसी प्रकार की अनुशासनहीनता की कोई घटना वहां घटित नहीं हुई थी। इसका कारण यह था कि सभी महत्वपूर्ण निर्णय जैसे कि आवासीय व्यवस्था आदि, विद्यार्थियों द्वारा ही वर्ष में एक बार तय किये जाते थें।[21] विद्यार्थियों के अपराध की

सुनवाई भी विद्यार्थियों द्वारा ही भ्रातृत्व भाव से की जाती थी तथा उद्दंड को निष्कासित किया जाता था।[22] इत्सिंग के अनुसार नालंदा में किसी भी बौद्ध विहार से अधिक दृढ़ नियम एवं परिनियम थे।[23] नालंदा में शिक्षक और छात्रों में अत्यन्त निकट का संबंध था। महावग्र में उद्घृत है कि विद्यार्थी प्रथम दस वर्ष अपने उपाध्याय के साथ पूर्ण निर्भर होकर रहते थे। विनय पत्रिका में [24] वर्णन आया है कि शिक्षक छात्र को अपने पुत्र की तरह मानते थे और छात्र भी शिक्षक को अपने पिता तुल्य मानते थे। नालंदा विश्वविद्यालय को अपनी मुहर (सील) और अपना प्रतीक चिन्ह (मोनोग्राफ) थे।

संदर्भ सूची :–

1. बालकृष्ण लाइक, पृ0 109–114, लेटर्स ऑन युवाङ्.च्वाङ्. ट्रैवल्स भाग – 2 पृ0– 169 तथा लाइफ पृ0 – 154–171, तकसुक द्वारा सम्पादित रिकार्ड ऑफ द वेस्टर्न वर्ल्ड वाई इत्सिंग, पृ0– 30, 65, 86, तथा 154
2. वील लाइफ ऑफ ह्वेसंग, पृ0– 111
3. वील रिकॉर्डस II, पृ0– 170, फाइफ पी0 पी0 पृ0 – 111–112
4. एमिग्रामिका इंडिया, 20, 43 तथा 37 का ई0 पृ0 – 45
5. टाका कुसु इत्सिंग, पृ0– 154
6. ई0 आई0 पृ0– 311
7. वील लाइफ ऑफ ह्वेसंग, पृ0– 112
8. ह्वेसंग भाग 2, पृ0– 165
9. वील आइफ ऑफ ह्वेनसंग, पृ0– 112
10. ई0 आई0 पृ0– 37
11. वही, पृ0– 311
12. धर्मरत्नत्यलेखानर्यम
13. बसु इंडियन टीचर्स ऑफ बुद्धिष्ट यूनिवरसिटिज, पृ0– 116–131
14. हवलदार त्रिपाठी, सहृदय बौद्ध धर्म और बिहार, पृ0– 199
15. हवलदार त्रिपाठी, सहृदय बौद्ध धर्म और बिहार, पृ0 – 198
16. वैंटर्स 2, पृ0– 165
17. विद्याभूषण, हिस्ट्री ऑफ इंडिया लौजिक, पृ0– 516
18. हवलदार त्रिपाठी, सहृदय बौद्ध धर्म और बिहार, पृ0– 199
19. बसु–इंडियन रिसर्च ऑफ बुद्धिस्ट युनिवरसिटीज, पृ0– 116–131
20. वील लाइफ ऑफ ह्वेनसंग, पृ0– 112
21. टाका कुसा इत्सिंग, पृ0– 86
22. वही, पृ0– 163
23. वही, पृ0 65
24. एस0 बी0 ई0, नोल्मुम, पृ0– 154